[Social Issues and Environmental Problems,Vol.3 (Iss.9:SE): Sep, 2015] ISSN- 2350-0530(O) ISSN- 2394-3629(P)
Impact Factor: 2.035 (I2OR)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i9SE.2015.3212

INTERNATIONAL JOURNAL OF RESEARCH – GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository

बदलता पर्यावरण और मानव–व्यवहार

अर्चना मेहरा
सहायक प्राध्यापक –हिन्दी, शास. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उज्जैन

मानव और पर्यावरण के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रायः हम किसी बुरे कार्य के लिए व्यक्ति को दोष देते है किन्तु सच्चाई यह है कि उसमें पर्यावरण भी उतना ही दोषी होता है, अतः पर्यावरण की क्षति के कारण आज मानव का अस्तित्व संकट में पड़ गया है। अब पर्यावरण चेतना को जगाना अतिआवश्यक हो गया है क्योंकि पर्यावरण भौतिक रूप में नहीं सामाजिक रूप में भी मानव समाज को घेरे हुए है। किसी व्यक्ति के व्यवहार को देखकर उसके पर्यावरण का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें प्राकृतिक दृश्य, वन उपवन, नदी, पर्वत, जीव जन्तु के साथ–साथ जलवायु और जनसंख्या इन सबकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनमें जब भी असंतुलन होता है, मानव व्यवहार भी असंतुलित होने लगता है। यह वैज्ञानिक सिद्ध कर चुके है। अतः पर्यावरण और मनुष्य दोनों में पारिस्थितिक समन्वय की अत्यधिक आवश्यकता है। इसे बिल्कुल नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता है।

पर्यावरण की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका उद्दीपन, उत्प्रेरण और प्रतिक्रिया के आधारभूत तत्त्व के रूप में है। उदाहरण के लिए प्रायः गाँवों के खुले हरे भरे वातावरण में लोग प्रसन्न, निर्द्वन्द्व और कम परेशान रहते है वहाँ लोगों में निराशा, ऊब, उदासी, अवसाद, घृणा और नकारात्मकता बहुत कम मिलेगी किन्तु शहरों में सब सुख–सुविधाएं होने के बावजूद ये विकृतियाँ और समस्याएँ आम हैं। इसका सीधा कारण वहाँ का पर्यावरण है। पर्यावरण का सम्बन्ध वस्तुतः व्यक्ति के व्यक्तित्व से है शहरीकरण और औद्योगीकरण ने मानव को कितना विकसित बनाया है यह भी एक बहुत बड़ा प्रश्न है। वह वाहर से विकसित दिखाई देता है किन्तु मनोवृत्तियों से उतना ही पतनशील होता जा रहा है। यह हम सब जानते है।

विन्स्टन चर्चिल ने एक बार कहा था – **''पहले हम इमारतें बनाते है और फिर इमारतें हमें बनाने लगती हैं''**
वे परिस्थितियाँ बड़ी भयंकर और विनाशक होती है जब मनुष्य अपने अतिस्वार्थ में आकर पर्यावरण को विकृत करता है और परिणामस्वरूप बड़ी–बड़ी प्राकृतिक आपदाओं जैसे अतिवृश्टि, अनावृश्टि, ज्वालामुखी का फटना, भूस्खलन जैसी घोर प्रलयंकारी विपत्तियों से नश्टप्राय हो जाता है। उत्तराखण्ड इसका प्रमाण है। इस पर्यावरणीय असंतुलन के पीछे नगरीकरण, वन विनाश, भूगर्भ का अतिदोहन औद्योगीकरण, रासायनिक अपशिष्ट दूषित गैसें आदि है जिनके करण भूमण्डल का चेहरा बदलता जा रहा है।

दूषित पर्यावरण मानव मन और व्यवहार को भी प्रदूषित करता है। इस कारण अवसाद, उद्दीपन, अनिद्रा, जड़ता, चिड़चिड़ापन और अनेकानेक मानसिक विकृतियाँ जन्म लेती है। यह सब मनुष्य को आत्मघात और अपराध की ओर उन्मुख करती है। प्रदूषण कई स्तरों पर व्याप्त है। जनसंख्या वृद्धि और जनसंख्या घनत्व से एक ही स्थान पर कई लोगों के रहने से बहुत से मनोविकार और अपराध पनपते हैं। सब जगह भीड़ ही भीड़ दिखाई देती है जिससे मानसिक भाान्ति समाप्त हो चुकी है। औद्योगीकरण और समृद्धि की आकांक्षा को लेकर भाहरों में लोगों का निरन्तर आना गंदी बस्तियों का विस्तार होना भी अपराध को जन्म देता है। औद्योगिक रूप से विकसित समाज में मानवीय व्यवहार यांत्रिक, नियतिवदी और पूरी तरह वस्तुपरक हो गया है। मनुष्य होने का जीवन्त अहसास और संवेदनशीलता समाप्त प्रायः है। इससे उच्चवर्ग में अहम् और निम्नवर्ग में हीनता विक्षोभ और असमर्थता से उत्पन्न मानसिक विक्षिप्तता की स्थिति सामान्य सी बात है। समाज में निरंतर हिंसा, अपराध और आक्रमकता में वृद्धि का कारण यही पर्यावरण है।

इसी प्रकार वायुमण्डल का प्रदूषण भाारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत बड़ा खतरा साबित हो रहा है। मानव भारीर के अंग जैसे किडनी, लीवर, हृदय, फेफड़े फसलों में अंधाधुंध कीटनाशकों के प्रयोग से क्षतिग्रस्त होकर मनुष्य के लिए जानलेवा साबित हो रहे है। जल, मिट्टी, वायु सब जगह खतरनाक रसायन भाामिल होते जा रहे है। यही रसायन पानी, हवा और खाद्य के द्वारा हमारे भारीर में निरंतर पहुंच रहे है। वायु प्रदूशण और निरंतर बढ़ते ध्वनि प्रदूषण से क्रोध, उत्तेजना, आक्रमकता, कार्यक्षमता में कमी जैसे विकार उत्पन्न हो रहे है। वैज्ञानिक अनुसंधानों का निष्कर्श है कि उद्योगों के गैसीय और रासायनिक उत्सर्जन से पृथ्वी का तापमान निरंतर बढ़ रहा है। **एक विद्वान** का कहना है –**''अमेरिका में जातीय दंगे तब भड़कते है जब गर्मियाँ पड़ती है।''** गर्मी में मनुष्यों को दुष्चिन्ता, अनिद्रा, तनाव, बैचेनी का बढ़ जाना सामान्य बात है। इसी प्रकार अत्यधिक भीत में अवसाद बढ़ता है। यह हाल ही के शोध से पता चला है। इसी प्रकार अत्यधिक भाोर मनुष्य को बहरा ही नहीं बनाता उसे मानसिक विक्षिप्तता की ओर भी धकेलता है। ध्वनि–प्रदूषण भाहरों की आम समस्या है। इससे रक्तचाप का बढ़ना, सिरदर्द, मितली, नपुंसकता और आक्रामकता जैसी समस्याएँ बढ़ रही है। हृदय और मस्तिश्क दोनों इसके शिकार बनते है और मानव व्यवहार बुरी तरह प्रभावित होता है।

प्रत्येक जीव के लिए पर्यावरण की एक निश्चित मानक स्थिति होती है। इसकी संघटना में विकृति आने पर तनाव उत्पन्न होता है। इसको नियंत्रित करने की स्थिति में स्टेरॉयड उत्पन्न होते है जो हार्मोन्स को प्रभावित करते हैं। तब एक अपसामान्य मानसिकता जन्म लेती है जो उसे नकारात्मक बनाती है। आज समाज में यही हो रहा है। मनुष्य अपने पर्यावरण के विराट स्वरूप से कट गया है। आर्थिक उदारीकरण और ग्लोबलाईजेशन के साथ उसके जीवन मूल्य बदल गए है। इसमें एक दूसरे के लिए कोई स्थान नहीं रहा गया है। सब एक दूसरे को रौंदते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं। भौतिकता इस कदर हावी हो चुकी है कि मानवता समाप्त हो रही। उपभोग–संस्कृति ने जितना पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया है उससे अधिक मानव समाज के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा किया है।

अब गम्भीरता से इस बात का विश्लेषण और आकलन होना चाहिए कि प्रदूषित होता पर्यावरण मनुष्य के अस्तित्व के लिए किस हद तक आत्मघाती साबित हो रहा है। **डार्विन** ने यह भलीभाँति सिद्ध किया है कि मनुष्य के आविर्भाव और क्रमिक विकास में पर्यावरण की क्या भूमिका रही है। अतिआव यक है कि नए सिरे से पर्यावरण चिन्तन हो, मानव फिर से वन, उपवन, नदी, पहाड़ से जुड़कर प्रकृति से जुड़े और उसे आत्मसात करे। प्रकृति से भात्रुता नहीं मित्रता करें और सहअस्तित्व की भावना को पुनर्जीवित करें।

सन्दर्भ

1. *पर्यावरण परम्परा और संस्कृति, डॉ. गोविन्द चातक*
2. *पर्यावरण बोध, सम्पादक डॉ. कल्पना गांगुली एवं संदीप नारूलकर*
3. *पर्यावरण और पारिस्थितिकी, डॉ. वी.के. श्रीवास्तव एवं बी.पी.राव*
4. *पर्यावरण एनसाइक्लोपीडिया, डॉ. पाण्डेय*
5. *पर्यावरण संकट एवं अमरत्व की प्राप्ति, उमेश राठौर*